परंपरा और आधुनिकता

भूमिका

कोई रीति , नीति अथवा प्रक्रिया कड़े और अनवरत प्रयोगों से गुजरने के बाद परंपरा का रूप ले पाती है और वह संगत परिवर्तन की गुंजाइश भी साथ लेकर चलती है । स्वाभाविक है आधुनिकता की समझ के लिए परंपरा का ज्ञान आवश्यक है ।

परिवर्तन की प्रक्रिया परंपरा का ही हिस्सा है , जो आधुनिकता को जन्म देती है क्योंकि आधुनिकता की शुरुआत शून्य से नहीं हों सकती । परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा किसी परंपरा के आधुनिक रूप लेने में निरंतरता रूपी कड़ी का विशेष महत्व है ।

आधुनिकता का सांस्कृतिक संदर्भ

जहां प्राचीन मान्यता के अनुसार मनुष्य एक शाश्वत धर्म के सहारे जीते हैं , वहीं प्रचलित आधुनिक मान्यता धर्म के स्थान पर संस्कृति को रखती है। यदि परंपरागत मान्यता सही है तो इसका महत्व मात्र ऐतिहासिक ही हो सकता है , उसमें स्थायी स्वरों की खोज ही व्यर्थ है क्योंकि इस दृष्टि से पुरानी सांस्कृतिक परंपरा का एक पक्ष सार्वभौम , आधुनिक सभ्यता की भूमिका मात्र है , जिसमें वह अपना परिष्कृत एवं विकसित रूप पाती है । परंपरा का दूसरा संदर्भ , जो आधुनिता के अनुकूल नहीं है , काल के द्वारा निरस्त जकड़न मात्र है । एक किंवदंती है कि खलीफा उमर ने सिकांदरिया के पुस्तकालय के विषय में कहा था कि यदि उसकी पुस्तकें कुरान के अनुकूल हैं तो अनावश्यक है और यदि प्रतिकूल हैं तो मिथ्या है ।

कालिदास ने कहा था कि पुराना सब अच्छा नहीं होता, नया सब बुरा नहीं होता। दोनों का समन्वय जरूरी है । मनुष्य का विवेक सर्वोपरि है और उसी के आधार पर समन्वय संभव होगा । परंपरा साधन है , साध्य नहीं । बुद्ध का उपदेश इस संदर्भ में बहुत सार्थक है नाव नदी के लिए होती है । उसका उपयोग करो , कृतज्ञ भाव

से उसका बोझ जीवन भर ढोते मत फिरो । अचेतन नाव तुम्हारी भावना की नहीं समझेगी पर उसके भार से तुम्हारी कमर अवश्य झुक जाएगी ।

परंपरा के सह - अस्तित्व के लिए क्या कोई कल्पनाशील प्रयत्न किए जाते हैं ? असहमति , विरोध और सुधार की परंपराओं का मूल्यांकन किस तरह किया जाता है ? इन प्रश्नों के समाधान - कारक उत्तरों पर मानव की नियति आकार लेती है । विकास और आधुनिकता आवश्यक है पर वे विसंगतियां और विकृतियां भी उत्पन्न करते हैं । इन प्रक्रियाओं से तीन प्रवृत्तियां बल पाती हैं -

व्यक्ति केंद्रिक्ता , लोकतांत्रिकता और धर्मनिरपेक्षकरण । व्यक्ति केंद्रिक्ता से भोगवाद बढ़ता है , सामाजिक सरोकार घटता है । लोकतांत्रिकता अनुशासन के ढांचे को ढीला कर अराजकता की स्थिति उत्पन्न करता है । धर्मनिरपेक्षता प्राय: धर्म विमुखता बन जाती है । तीनों प्रवृत्तियों के लक्ष्य सही हैं पर अनियंत्रित रूप से उनका आना अनेक जटिलताओं को महिमा मंडित करना भी उचित नहीं है । उनकी भी अपनी सीमाएं होती है । अस्पृश्यता एक बड़े वर्ग की संरचनात्मक दास - स्थिति , स्त्री का उत्पीड़न आदि प्रथाओं को परंपरा के नाम पर भी उचित नहीं ठहराया जा सकता । उन पर धार्मिक और दार्शनिक मुलम्मा भी उनके अंतर्निहित अन्याय को झुठला नहीं सकता । निहित स्वार्थ परंपरा के समर्थक बन जाते हैं , जो सच्चे इतिहास - बोध और दूरदर्शी भविष्य बोध के बिना समाज को लक्ष्य - भ्रष्ट करता है ।

विषय की पड़ताल

ऐसी ही बात परंपरा के लिए आधुनिकता के दृष्टिकोण से वस्तुत: कही जानी चाहिए । इसके विपरीत , एक दूसरा विकल्प यह है की परंपरा में आस्था रख आधुनिक दृष्टि को छोड़ने के लिए आग्रह किया जाए । किन्तु इस विकल्प को विचार में रखना संभवत: प्रयोजनतीत होगी । यद्यपि महात्मा गांधी ने हिंद स्वराज में इस तरह विचार का सूत्रपात किया था।

मेरा मत है कि , इसके विपरीत ; इन दो विकल्पों के अतिरिक्त एक मध्यमार्ग विकल्प भी है , जिसमें परंपरा एवं आधुनिकता का सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है , वह है - परंपरा का प्रगतिशील मानववादी पक्ष ।

इस दृष्टि का एक उदाहरण पंडित नेहरू की 1962 की एक रचना में देखा जा सकता है -

" हमलोग न केवल जनतांत्रिक पद्धति से देश के औद्योगिकरण में लगे हुए हैं बल्कि भारतीय दर्शन और जीवन विधा की मौलिकता का संरक्षण भी करना चाहते हैं।"

सामाजिक संदर्भ

1996 की राष्ट्रीयत शिक्षा नीति एवं वर्तमान 2019 की शिक्षा नीति के प्रस्ताव में भी इस प्रकार के समन्वयात्मक विचार के बीज - बिंदु देखे जा सकते हैं।

हिंदी भाषा एवं साहित्य के विद्यार्थी के रूप में भी मेरी यह मान्यता है चिंतन एवं सृजन के क्षेत्रों में भी प्राय: ऐसी स्थिति अनुभूत होती है ।

विचार करने योग्य तथ्य यह भी है कि समन्वय की यह बात कहां तक उचित और व्यावहारिक है , इस प्रश्न के निर्णय के लिए परंपरा के मौलिकस्वरूप पर विचार आवश्यक है ।